

चेतना विकास मूल्य शिक्षा

कक्षा — 2

प्रकाशक

संरक्षण एवं मार्गदर्शन

ए. नागराज

प्रणेता

मध्यस्थ दर्शन (सह—अस्तित्ववाद)

लेखन

साधन भट्टाचार्य

श्रीराम नरसिम्हन

कुमार संभव, सोम त्यागी

बी.आर. अग्रवाल, अंजनी कुमार

श्रीमती सुवर्णा योगेश

प्राक्कथन

मानवीय शिक्षा का प्राक्कथन एक आवश्यकता के रूप में हमें महसूस हुआ। क्योंकि यह पाठ्यपुस्तिका का उपक्रम पहली कक्षा से प्रस्तुत किया गया है। क्रम से परंपरागत होने तक सिलसिला बना ही रहेगा। सहअस्तित्व अपने स्वरूप में व्यापक वस्तु में ही सम्पूर्ण एक-एक वस्तु जैसा परमाणु, अणु, ग्रह, गोल, सौर व्यूह, आकाश गंगा। यह डूबी, भीगी, घिरी होने के आधार पर नियंत्रण, क्रियाशीलता और ऊर्जा सम्पन्नता प्रत्येक वस्तु में नित्य प्रमाण के रूप में देखा गया है। साथ में यह भी समझा गया है कि व्यापक वस्तु में समाहित सम्पूर्ण एक-एक वस्तुओं की अविभाज्यता नित्य वर्तमान है। यही सह-अस्तित्ववादी विश्व-दृष्टिकोण का मूल रूप है। ऐसे सहअस्तित्व नित्य प्रभावी रहना स्वाभाविक है।

सहअस्तित्व को ध्यान में रखते हुए प्रथम कक्षा से अर्थात् अक्षराभ्यास से चलकर शब्दों का अभ्यास और शब्दों के अभ्यास से अर्थ का अभ्यास, अर्थों के अभ्यास के तात्पर्य में हर शब्द किसी वस्तु का, क्रिया का अथवा फल-परिणाम का नाम है। ऐसा अर्थ इंगित होना ही शब्द से अर्थ समझा गया है। इसलिए अर्थबोध करने के उपक्रम में शिक्षा विधा को अध्ययन के रूप में प्रस्तुत करने का सौभाग्य प्रस्तुत हुआ। यह पठन विधि से अर्थ बोध तक पहुंचने का मार्ग प्रशस्त हुआ। इसे प्रस्तावित करना इसलिए आवश्यक समझा गया कि मानव सह-अस्तित्व विधि से ही समुदाय चेतना से मानव चेतना में संतुलित होना है। मानव चेतना का प्रयोजन, समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व पूर्वक जीने का प्रमाण है। इससे अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था की पहचान होना स्वाभाविक है।

यह तो सटीक है कि विगत विधि से जो पाठ-पठन का लक्ष्य था, उसे आगे पढ़ाने के जिल भी उपायों को खोजा गया है, वह सब सार्थक है, मूलतः मानवीय शिक्षा के अभाव वश सामुदायिकता, मतभेद, साम, दाम, दण्ड, भेद, परस्पर समुदायों की निहित अतिशोधों का विश्वास प्रयोग हो चुका है। इन सब अभिशापों से मुक्ति पाने की आकांक्षा मानव में निहित होना भी पाया गया। इसलिए मानवीय शिक्षा का निश्चयीकरण आवश्यक समझा गया है। इसे क्रियान्वयन करने की क्रमविधि से प्रस्तुत किया। मानवीय शिक्षा में मानव का अध्ययन प्रधान उद्देश्य है। इस उद्देश्य को साधक बनाने के क्रम में प्रथम कक्षा से ही सूत्रपात रूप में मूल्य संबंधी और शरीर के अवयव संबंधी शब्दों का अधिकतम चयन किया गया है। साथ में परस्पर मानव संबंधों से संबंधित शब्दों का चयन किया गया है। इसे हर बालक अथवा किशोर आसानी से पहचान पायेगा। ऐसी हमारी स्वीकृति है। यह सार्थक और सफल होना पाया गया है। भविष्य में मूल्यांकन होता रहेगा। इस विधि से सर्व शुभहोने की कामना है।

ए. नागराज

प्रणेता

मध्यस्थ दर्शन (सहअस्तित्ववाद)

श्री नर्मदाचंद, भजनाश्रम, अमरकंटक

जिला अनूपपुर (मध्यप्रदेश)

भूमिका

विज्ञान शिक्षा से छात्र-छात्राओं एवं युवाओं में तर्कशक्ति का अभूतपूर्व विकास हुआ है। जिससे आस्था (बिना जाने मान लेना) की प्रवृत्ति में कमी आई है। अतः परंपरागत शैली जिसमें यह करो, यह न करो अथवा "ऐसा जीना चाहिए" आदि उपदेश विद्यार्थियों में अब प्रभावशाली सिद्ध नहीं हो पा रहे हैं। ऐसे में परिवारोन्मुखी, समाजोन्मुखी शिक्षा के सार्वभौम स्वरूप पर चिंतन की आवश्यकता है।

यूनेस्को ——— द्वारा अपेक्षित शिक्षा के चार स्तम्भों में मुख्य स्तम्भ ——— अर्थात् "साथ-साथ जीना सीखना" पर जोर दिया है।

मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार ने मानव मूल्य शिक्षा हेतु निम्न मार्गदर्शन दिया है—

1. पाठ्यक्रम किसी भी प्रकार के अंधविश्वास, कर्मकाण्ड व पूजन पद्धति से मुक्त हो।
2. पाठ्यक्रम रहस्यवाद, सम्प्रदायवाद व व्यक्तिवाद से मुक्त हो।
3. पाठ्यक्रम "करो, न करो" आदि उपदेश न होकर तर्कपूर्ण हो, तर्कपूर्ण ढंग से इसका प्रयोग एवं विश्लेषण द्वारा परीक्षण कर सकते हो।
4. पाठ्यक्रम को आचरण में प्रमाणित किया जा सकता हो।
5. पाठ्यक्रम दर्शन आधारित हो।

आधुनिक शिक्षा को रोजगारोन्मुखी ही नहीं बल्कि परिवारोन्मुखी, समाजोन्मुखी भी होने की आवश्यकता है, ताकि हर परिवार समाधान, समृद्धिपूर्वक जी सके। समाधान का अर्थ मानव संबंधों में परस्पर तृप्ति एवं प्रकृति के साथ संतुलनपूर्वक जीना है। समृद्धि अर्थात् अभाव-मुक्त जीना इस आशा की पूर्ति के लिए मानवीय मूल्यों के शिक्षक की आवश्यकता महसूस की जाती रही है।

मध्यस्थ दर्शन (सह-अस्तित्ववाद) उपरोक्त सभी कसौटियों को पूरा करता है, जिसका परिचय "जीवन विद्या शिविरों" के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। मध्यस्थ दर्शन से विस्तृत चेतना विकास मूल्य शिक्षा मानव में पाँच सद्गुणों को सुनिश्चित करती है —

1. स्वयं में विश्वास
2. श्रेष्ठता का सम्मान
3. प्रतिभा एवं व्यक्तित्व में संतुलन
4. व्यवसाय में स्वावलंबन
5. व्यवहार में सामाजिकता

आज धरती एक गाँव ——— हो गयी है। अतः विश्व शांति हेतु वैश्विक नागरिक ——— अर्थात् सार्वभौम मानवीय आचरण को पहचानने की आवश्यकता है। चेतना विकास मूल्य शिक्षा के प्रकाश में सार्वभौम मानवीय आचरण, सार्वभौम मानवीय शिक्षा, सार्वभौम मानवीय व्यवस्था, सार्वभौम मानवीय संविधान का व्यावहारिक स्वरूप व्याख्यायित होता है। साथ ही "मानव में समानता" व धर्मनिरपेक्षता का व्यावहारिक स्वरूप प्रकट होता है जिससे "मानव जाति एक, मानव धर्म एक" पूर्वक जीने की राह प्रशस्त होती है।

विश्व के इतिहास में शायद पहली बार हुआ है कि संपूर्ण दर्शन को प्राथमिक शिक्षा के स्तर पर पहुंचाया गया हो। राज्य शासन ने कक्षा 10वीं तक अध्ययन करने वाले सभी बच्चों को सहअस्तित्व का महत्व इस दर्शन के माध्यम से सिखाने का निर्णय लिया है। यह पुस्तक इसी प्रयास का एक भाग है। हम आशा करते हैं कि शिक्षक स्वविवेक के साथ इस पुस्तक का उपयोग करके इस महती उद्देश्य की पूर्ति करेंगे। जाहिर है आपके सुझावों का हमें हमेशा इंतजार रहेगा।

नंद कुमार (भा.प्र.से.)

संचालक

लेखकीय

प्रत्येक शिशु जन्म से ही न्यायापेक्षी, सही कार्य—व्यवहार करने वाला एवं सत्य वक्ता होता है, परन्तु न्याय, सही कार्य—व्यवहार एवं सत्य से शिशु अनभिज्ञ रहता है। इन्हें समझने के लिए वह परम्परा पर, मुख्यतः शिक्षा परम्परा पर आश्रित रहता है। इस हेतु आज्ञापालन, अनुसरण, अनुकरण एवं जिज्ञासा सम्पन्न रहता है।

प्राथमिक कक्षा में प्रवेश के पूर्व ही सभी शिशु अपनी मातृभाषा को समझने व बोलने की योग्यता से सम्पन्न होते हैं एवं अपने परिवेश के प्रायः सभी कार्य—व्यवहार व वस्तुओं को पहचानते हैं। अपने परिवेश के अनुसार मान्यता व विचार संपन्न रहते हैं।

विद्यालय में प्रवेश के साथ शिक्षा में अक्षर, शब्दों एवं अंकों को पहचानने व लिखने का कार्य शिक्षा की प्रमुख वस्तु होती है जबकि सभी विद्यार्थी अनेक वाक्यों को बोलने, अनेक वाक्य बनाने में समर्थ रहते हैं। उनकी इस पूर्व योग्यता को बढ़ाने के लिए शिक्षा में स्पष्ट कार्यक्रम का अत्याभाव है फलतः शिक्षा में पर्याप्त रुचि नहीं बनती। इसी के साथ प्राथमिक स्तर पर स्वयं पढ़कर समझने—सीखने की योग्यता अधिकांश विद्यार्थियों में विकसित नहीं होती है और वे अधिकांशतः शिक्षक पर ही आश्रित रहते हैं। इसे पूरा करना ही शिक्षक की सार्थकता है।

अस्तु विद्यार्थियों की योग्यता के अनुसार मानवीय चेतना विकसित करने हेतु एवं शिक्षकों की सार्थकता प्रमाणित होने के उद्देश्य से 'चेतना विकास मूल्य शिक्षा' के पाठ्यपुस्तकों को लिखा गया है।

हमें विश्वास है यह पुस्तक इन अर्थों को प्राप्त करने में सफल होगा।

चेतना विकास मूल्य शिक्षा की पुस्तक प्रथम बार लिखी गई है अतः इसमें सुधार की अपार सम्भावनाएँ हैं। विद्वान अध्यापकगणों से इस हेतु सतत् मार्गदर्शन की अपेक्षा है।

लेखकगण

प्रथम संस्करण की भूमिका

चेतना विकास मूल्य शिक्षा पर कक्षा 1 से 5 तक पुस्तक 2009 में लिखी गई।

प्रथम बार पुस्तक लिखने तथा अल्प समय में इसे पूरा करने के कारण व्याकरण संबंधी एवं टंकण संबंधी भूल भी रही। कक्षा 1 से सभी पाठ कविता में हैं। एवं कविता में तुकबंदी का अभाव था।

प्रथम संस्करण में शिक्षा की वस्तु को यथावत रखते हुये व्याकरण में सुधार किया गया है एवं कविताओं में तुकबंदी पर थोड़ा ध्यान दिया गया है। कुछ तकनीकी से संबंधित पाठों को हटा दिया गया है।

हमें विश्वास है पुस्तक विद्यार्थियों के लिए सुबोध होगा।

लेखकगण

अनुक्रमणिका

भाग	पाठ	नाम	पृ. संख्या
1. मानव लक्ष्य	पाठ 1	मानव लक्ष्य	
2. समग्र व्यवस्था	पाठ 2	अस्तित्व	
	पाठ 3	पदार्थ अवस्था	
	पाठ 4	प्राणावस्था	
	पाठ 5	जीवावस्था	
	पाठ 6	ज्ञानावस्था	
3. अखण्ड समाज	पाठ 7	परिवार	
	पाठ 8	मानव संबंध	
	पाठ 9	मानव समाज	
	पाठ 10	मेरा विद्यालय	
	पाठ 11	गुरु—शिष्य संबंध	
4. सार्वभौम व्यवस्था	पाठ 12	हमारी आवश्यकता	
	पाठ 13	जानना	
	पाठ 14	उत्सव	
	पाठ 15	व्यवसाय	
	पाठ 16	ऋतु	
	पाठ 17	शरीर	
	पाठ 18	आहार	
	पाठ 19	औषधि	

वंदना

वंदना उनकी करें, जिनसे सुशोभित है धरा ।
जिनसे है मानव का पथ, प्रकाश ज्योति से भरा ॥

जिनसे दिशा हमको मिली, नित मानवीय मार्ग की ।
पथ मिला निश्चित हमें थी, कामना जिस मार्ग की ॥
कृतज्ञता से सौम्यता की, नित्य आयी निरंतरा ।
जिनसे है मानव का पथ, प्रकाश ज्योति से भरा ॥

जिनका है चिन्तन शुभ यही, कैसे हो मानव सुखमयी?
प्रेरणा से जिनकी है, मानव का जीवन सुखमयी ॥
श्रद्धा समर्पित जिनसे आए, मानवीय परम्परा ।
जिनसे है मानव का पथ, प्रकाश ज्योति से भरा ॥

सबके सुख की कामना ले, रहती जिनकी कल्पना ।
निकली जिनसे मानवीय पथ, हेतु निश्चित योजना ॥
पूज्यता उन हेतु जिनसे, है सुसज्जित वसुन्धरा ।
जिनसे है मानव का पथ, प्रकाश ज्योति से भरा ॥
—प्रदीप पूरक, बिजनौर (उ.प्र.)

tàÀàw vŌu

tètàÀàw yĀmāÀà Nŭñ

tĀyĥā NāĀà j ǎNma/j ǎNmā Nŭñ

tĀZayĀĀà ĒNĀà j ǎNma/j ǎNmā Nŭñ

NĒ tàÀàw yĥā NāĀà ¥wPZayĀĀà ĒNĀà j ǎNmçNĀñ

tĀytl Āà j ǎNma/j ǎNmā Nŭñ

ytl ĀàqĒ tĀyĥā ; ĀĒ ZayĀĀà Nāṇā/Nāṇā Nŭñ

tĀ; qĀāĪĀĒ Sýçytl Āà j ǎNma/j ǎNmā Nŭñ

tĀ; qĀā Ōātmā; ðSýçytl Āà j ǎNma/j ǎNmā Nŭñ

tĀ; qĀç; ày - qāy Sýl wḐmā ðSýçytl Āà j ǎNma/j ǎNmā Nŭñ

ysā tàÀàw ¥çyā Nā j ǎNmçNĀñ

ytl SýĒ Nā tàÀàw ytl ĀāĒ tàÀàw SýNvāà Nēñ

tĀytl ĀāĒ rĀĀāà j ǎNma/j ǎNmā Nŭñ

NĒ tàÀàw ytl ĀāĒ Nāççyā tĀj ǎNma/j ǎNmā Nŭñ

NĒ tàÀàw ytl SýĒ Nā āĀĒĀmĒ yĥ qāvSý kā ySýmā Nēñ

uNā tàÀàw Sýl tāv j ǎNm Nēñ

uNā tàÀàw vŌu Nēñ

tɛçəyqE ; əSyalā āAhācēAṁā Nēn

i əSyalā tɛEāā tɛrNn yāĖmāĖcāAhācēAṁcNān

çmĀāç³uāā māĖcNāSý Nt EĀNĕāā ĀāNāçāṁçñ

i əSyalā i yāt Nē çySya Syāçē ; āĖ - 2Ė ĀāNāNēn

i əSyalā Sya SyāçēāSyāāĖā ĀāNāNē Syāçēyātā ĀāNā Nēn

i əSyalā tɛakmĀā sā ; āāçrNĕçmçkāmçNā ; āāç ; əSyalā Nā āAhācēAṁā Nēn

i əSyalā tɛyūē j Āōtā ; āĖ rNn yāĖmāĖcNān

yūēqāvēāĀā yçāĀSývSýE qŏj t āĀā tɛā²qma Nĕ āAhācēAṁā Nēn

çyā ZāmāĀā Nānā Nēn uN āĀut Nēn

āĀut tɛSýsā rĀvāw ĀāNāNānā n

i əSyalā tɛyūē ; Āu āNāSý yān Nēn

çytɛNtāĖ qəwā, rā, ĩāSý ; āā āN Nān

çĀā yrSyāçSý yān yāĖ qāĖwā SýNĕçNān

Nt qəwā qE ĖNĕçNān

qəwā qE ytō, qNāp ĀāĀ, Āāvç wĀā ; āĖ hç Nān

qəwā qE tĀāu, qĭā-qŏā, qŏp-qāç ; āĖ ātSā-q^{3/4}nĖ, wāuā kv yān- yān Nēn

NāāçSya Āāt ; 0m^{3/4}w Nēn

yān-yān Nāā yN- ; 0m^{3/4}w Nēn

qəp - 3

qAanə ; wDnə

qəwə qE atSə, q³nE, wauə kv, qəp-qəp q³ā-q³ā ; ðE tAāu qauçkəncNān atSə-q³nE, wauə ; ðE kv SýçqAanə ; wDnə SýNmc Nān

oEmā Sýl ymN qE atSə, q³nE ; ðE kv qauə kāmā Nēn wauəoEmā Sýl ymN Sý ð qE qauə kāmā Nēn

atSə ; AaSý ZəSýā Sýl Nānā Nēkəçvāv, qāvā, yAçA ; ðE Sýavā atSə n

q³nE ; AaSý ZəSýā Sý NāncNā kəçj Aā q³nE, vāNā q³nE, yPatEtE, AyIal q³nE ; āA n

oEmā qE təp ; ðE hāEā (AatSýlAā), uçAçZəSýā Sý qāAā atvmcNān təp qāAā qāAçSý av¥ Equāçā aSýuā kāmā Nēn AāAā ; ðE māvar tətəp qāAā Eñmā Nēn ytō tēhāEā qāAā qauā kāmā Nē n ÇyyçAatSý rAāuā kāmā Nēn ÇyçqāAçSý av¥ Equāçā AāNāaSýuā kāmā Nēn

oEmā Sýl ymN qE çj çDnāAāçSýçqwen uā qNāp SýNmcNān qNāpçyçAāAualāAaSývmā Nē n AāAualytō tətvkāmā Nēn AāAual ¼lv Sýl ; ðE rNmā Nēn qāAā sā ¼lv Sýl ; ðE rNmā Nēn ysā mEv ¼lv Sýl ; ðE rNmcNān uN āAut Nēn uN Ntāç ¥Sý kəçā Eñmā Nēn āAut tēSýsā sā qāEwmāAā AāNāNānā n

qəp - 4

Zāā/āawDnə

qəp-qəpçSýçZāā/āawDnə SýNmcNān qəp-qəpçSýçwAāDqām sā SýNmcNān uçj ðE ZəSýā Sý NāncNān (1) wā (2) l āp (3) rç uā vmā ; ðE (4) i ay uā IāSý n

Sý²pqəp-qəpçrNān rəpNāncNā ; ðE SýçewxāmSý kāmwm EñmcNān çANāwā SýNmcNān kəç ; at, Aāt, qāçv, rE^aā, ; ālvā, Sý¹Nv ; āA n

wāçyç²pçqəpçSýçl āp SýNmcNā SýEāA, Aārā^aāNv, āāvar l āp Nān AyEçrəpçqəpç Sý yNāEçrəpçwāvçqəpçSýççv uā vmā SýNm Nān kəç- vāSýl, SýEñāp, yt, mEāç SýEwā ; āA n

rNān²pçqəpçSýçnt i ay uā IāSý SýNmcNākəççyEçEāç t¹E, j Aā, tā, qāvSý, tçā, oāAūā ; āA n

qəp-qəpçtēkəp mĀā, Iāhā, qūā, Aāv, Aāv ; ðE rāk uçyām ; Pa NāncNān rāk yçqəpçE^aamc Nān Aāt Sý wā Sý rāk yçAāt Sýā Nā qāā E^aamā Nē Sýsā sā ; at Sýā qāā AāNāE^aamā n Çyā ZəSýā AārāSý rāk yçAārāSýā, yt Sý rāk yçyt Sýā qāā E^aamā Nēn uN āAā j m Nānā Nēn ÇyçlūwDnə SýNmcNān Çyā ZəSýā ; at Sý wā tēryām !ymātēā (Aāv) ; amcNāçwpāt Sý ; Am tēAāv qSýSýE rāk mēāE Nānā Nēn ¥çā Nē wxēNānā Nēn

Çy ZəSýā Aārāw ; Au qəp-qəpçtēçā Nānā Nēn ZāçSý qəp-qəpçSýā ; āj E¹ā āAā j m Nānā Nēn ZāçSý qəp-qəpçlūwDnə tēNāncNān

qəwə qE ; Âsý ZəSýÊ Sý qİā-qŌā qəuçkəmçNān qİā-qŌāuəSýāNt kāv ; wdnə sâ SýNmçNān

oEmā qE ÊNĀwəvçqİā SýāNt sâ-j Ê SýNmçNēn kəç^aau, i əp, Sŭlā, arĭvā, āNĖ¹/₂ rai ,
āyN, sāvāĀÊ ; āA n

; əSýĀtəEĀwəvçqŌāuəSýāNt Âs-j Ê SýNmçNān ÇĀNçhg Ê sâ SýNmçNān māmā, tĀā,
Sýā à, āā÷, Êĭvcuçyr Âs-j Ê uā hg Ê Nān

qāā tĒĒĀwəvçkāv kvj Ê SýNvəmçNān qİā-qŌāuətĒyçSŭ²pSýāTĀāu qəvmçNān ÇĀNç
qəvmāqİā-qŌā SýNmçNān kəç^aau, sŷ, Sŭlā, i əp, ^aaoā, tĀā, māmā ; āA n ; Âsý qİā-qŌā wĀā
tĒĒNmçNān ÇĀNçqāvā ĀāNā kāmā n kəçrai , sāvā āyuāÊ, sŏpua, vSŷ¹p^ai à ; āA n

^aau i āy hāmā Nēi əp sâ i āy hāmā Nēn i āy hĀwəvçkāv ĪāSýāNĒā SýNvəmçNēn kəç^a
^aau, i əp, ^aaoā, sŷ, āNĖ¹/₂, hĒ^aā ; āA n

tāy hĀwəvçkāv tāyāNĒā SýNvəmçNān kəç- rai , āyN, sŏpua, āyuāÊ ; āA n

^aau NtĪā i āy Nā hāmā Nēn rai NtĪā tāy Nā hāmā Nēn ^aau ¥wɸysā ĪāSýāNĒā qĪāNāp
yçqāā qāmçNān rai , j āmā, āyN ; āA ysā tāyāNĒā qĪākās yçj à¹SýÊ qāā qāmçNān

ysā kāvəSýā ; āNĒā āĀĪj m Nāmā Nēn ysā kāvəSýā ; āj Ê¹/₂ āĀĪj m Nāmā Nēn

ḥySý qNvcSý qāṭ tēNt qĀānē; wDnā, Zāā; wDnā; āē kāv; wDnā Sý rāē tēytl ḥ
Nān ḥy qāṭ tēNt ŌāāwDnā Sýytl ḥān

tāĀw ŌāāwDnā tē; ānā Nēn

ysā tāĀw yhā Nāā j āNmēNān

ZāāSý tāĀw ytl SýĒ yhā Nāā Nēn

ysā tāĀw Sýā vŌu yhā Nāā Nēn

ysā tāĀw Sýā vŌu ytaĀ Nēn

ZāāSý Dwdn tāĀw Īāē tēĀāNān, Āāqē, Āā; āhē ĀāSýĀā, ¥Sý tĪ, ¥Sý ĀāSý, ¥Sý
āyĒ Nāā Nēn

ZāāSý Dwdn tāĀw Īāē tēqā ŌāāŌōuāĪwbpqā SýtĀŌōuāĪNāā Nēn

ysā tāĀw Sýl Ēj Āā ¥Sý ytaĀ Nāā Nēn

ysā tāĀw SýlqĀā SýĒmēNān

Nt ysā ātāSý yān hĪĀāSýl SýlqĀā SýĒmēNān Nt ysā tāā-āqmā Sý yān ĒNĀā; āē
i āāSýā SýlqĀā SýĒmēNān āā Ūā yāSýĒ Nt ¥Sý qĪāSýl SýlqĀā SýĒmēNān āh vāp Īāā
yāSýĒ hĪĀāwāvĪuāQý Sýl SýlqĀā SýĒmēNān yNūāā Īāā yāSýĒ Nt yān tēSýāuēSýĒāSýl
SýlqĀā SýĒmēNān Nt ysā SýlqĀā SýĒmēNān Nt ākmĀā j āNēEmĀā SýlqĀā SýĒ ySýmēNān ysā
tāĀw ¥yā SýĒ ySýmēNēn

Nt āvhĀāSýl SýlqĀā SýĒmēNāywpNān yčāvhmēNān Nt rāāSýl SýlqĀā SýĒmēNēywp
tĪ yčāvmēNān Nt Īāē Sý Ōāē; qĀā SýlqĀā SýāyāSýĒ SýĒmēNān ysā tāāu Īāē Sý Ōāē
SýlqĀā SýāyāSýĒ SýĒmēNān

Nt qáwáE tẹ́EñmçÑñi qáwáE tẹ́tama-áqma, sàcẹ- rĩNà, ÀàÀà-ÀàÀà ; áE SyàSyà - SyàSyl
 ysà yàn-yàn EñmçÑñi qáwáE tẹ́tama-áqma ; áE ysà ròpNtáE qàvÀà-qàvÀà 1/2 SyEñmçÑñi háÀà,
 qáÀà, j vÀà, Nt ysà qáwáE tẹ́yáhmcÑñi Nt ysà qáwáE tẹ́Nà sàxà yáhmcÑñi
 qáwáE tẹ́ysà ¥Sy ÀyÉçSyà yÑuà, SyEñmçÑñi tama-áqma ròp - rkaàSyl ywà SyEñmçÑñi
 ; áE 2pèr° j àSyl sà Àhsàv SyEñmçÑñi Syàcẹ ; ÐwÐn Nàna Nèm r EySyl ywà SyEñmçÑñi
 qáwáE tẹ́2pèr° j ròpSyà SyNàà táÀmcÑñi ; áE ròpSyà ytl áE ; ÁàyáE j vmçÑñi Nt ròp
 Syà yàn EñSyE ywà SyEÀà yáhmcÑñi
 tama-áqma ; áE ysà ròpsàkÀà, wé, EñNàçSyà ÐnàÀà ¥wþ ; àwÍuSyà wÐmà àSyà Zàrb SyEñmç
 Ññi Nt ysà Syà sàkÀà qáwáE tẹ́rÀàna Nèn
 qáwáE tẹ́Nt ysà yàn-yàn kámçÑñi qáwáE tẹ́kàÀà Ntç ; °2p v^àna Nèn

Nt ysā qāwā tēkāmçNān qāwā tētāmā, āqmā, sāsē; ē rñā yērāo NāçNān
 çy SýŌā tēnt tamā Sý yērāo SýçytI Pāñ
 tēā tamā māt Nāçy°j ā, tēā tamā māt Nāç; °²pāñ
 tēā tamā tāā Sýl ; °²pā, tēā tamā māt Nāçy°j āññ
 Éak yrēçÉ°pmā Nāç āĀā sē yvā SýĒmā Nāñ
 sāĀā māñā qSýmā Nāç sāĀā māñā SýĒmā Nāññ
 ĀāSý yvāñ māt Āmā Nāç ar^apāyačyā/I amā Nāñ
 Sýat ysā māt SýĒmā Nāç Sýat ysā āyhvamā Nāññ
 āvhĀā qMĀā māt ycyāñī ; °²pā rāmbyr tākāĀññ
 kāĀāSý ¼pā māt ycyāñī yĀā māñāĒā SýñĀā tāĀññ
 tēā tamā māt Nāçy°j ā, tēā tamā māt Nāç; °²pā
 tēā tamā tāā Sýl ; °²pā, tēā tamā māt Nāçy°j

Ńt ysā qāwā tēŃmçŃāñ qāwā tētāmā-āqmā, sàcē-rŃĀā, ÀāÀā-ÀāĀā, ŠyāŠyā-
ŠyāŠyl Šy yān ĒŃmçŃāñ

qāwā Šy ; vāwā sārŃñ yāĒvāā ŃtāĒcyān ĒŃmçŃāñ ĒĀā yrŠyāŃt ytāk ŠyŃmç
Ńāñ yāā Šy ysā vāā Šyā Šy yān ātvāŠyĒ ytāk ŠyŃmçŃāñ

Ńt āvūāvu tēqŃmçŃāñ āvūāvu ytāk Šyā Šy sārŃā Ńāñ Ńēñ ; ĀāŠy qāwāĒyāvūān
āvūāvu tēqŃmçŃāñ ; āmçŃāñ ŠyĒqāwāĒyāvūā ; āŠyĒ āvūāvu swĀā Šyā ĀĀtāā ŠyĒmçŃā
ĒyŠyl 1p-Āāp Šyā 0p ŠyĒmçŃāwēyŠyl yĀyācēŠyā ĀuāĀ ĒhçŃāñ

āvūāvu tē ; ĀuāqŠy wēp ; ĀuāqŠy āvūānJuā ŠyāqŃmç āvūāwēpŃtĀ āmçŃāñ
āvūānJuā ŠyāhçŠyā wēpJuāuāt sārāyāhçŃāñ āvūāvu tēytū-ytū qĒ Ēyāw sārŃāñ
Ńāñ Ēyāw tēysā āvūān wēp ; ĀuāqŠyāā ātvāŠyĒ ; qĀā ZāyĀĀmā ŠyāĀuQy ŠyĒmçŃāwēp
ysā ŠyāZāyĀĀ ŠyĒmçŃāñ

i kB&10
ejk fo | ky;

मेरे घर से थोड़ी दूर पर विद्यालय है।

मैं नियमित विद्यालय जाता/जाती हूँ।

मैं विद्या-अध्ययन करने के लिए विद्यालय जाता हूँ।

विद्यालय में कई कक्षाएँ एवं अनेक शिक्षक और शिक्षिकाएँ हैं।

हम सभी विद्यार्थी सभी शिक्षकों को अध्यापक जी कहकर सम्बोधित

करते हैं एवं शिक्षिकाओं को अध्यापिकाजी कहकर सम्बोधित करते हैं।

हम सभी सहपाठियों को भैया जी एवं बहन जी कहकर सम्बोधित करते हैं।

विद्यालय के सभी सहपाठी पढ़ने, लिखने, सीखने एवं समझने में एक-दूसरे

का

सहयोग करते हैं।

घर में माता पिता हमारी देखभाल करते हैं और विद्यालय में अध्यापकजी एवं
अध्यापिका जी हमारा देखभाल करते हैं।

घर में माता-पिता अभिभावक हैं।

विद्यालय में अध्यापकजी एवं अध्यापिका जी हमारे अभिभावक हैं।

विद्यालय में हम पढ़ने एवं समझने जाते हैं ।

अध्यापक जी एवं अध्यापिका जी हमें पढ़ाते हैं और समझाते हैं ।

हम लोग अध्यापक जी एवं अध्यापिका जी के शिष्य-शिष्या हैं ।

हम अध्यापक जी एवं अध्यापिका जी से समझते और सीखते हैं ।

मैं सच्चाई को समझना चाहता/चाहती हूँ, अध्यापक जी एवं अध्यापिका जी मुझे सच्चाई को समझाते हैं ।

अध्यापक जी एवं अध्यापिका जी हमें वायु-जल-थल, पेड़-पौधे, पशु-पक्षी और मानव के बारे में समझाते हैं ।

अध्यापक जी एवं अध्यापिका जी हमें शब्दों का उच्चारण सिखाते हैं ।

अध्यापक जी एवं अध्यापिका जी हमें चित्र बनाना, लिखना एवं वाक्य-रचना सिखाते हैं ।

अध्यापक जी एवं अध्यापिका जी हमें शरीर की सफाई करना सिखाते हैं ।

अध्यापक जी एवं अध्यापिका जी हमें सही जीना समझाते हैं ।

मैं अध्यापक जी एवं अध्यापिका जी की आज्ञा का पालन करता/करती हूँ ।

मैं अध्यापक जी एवं अध्यापिका जी जैसा समझदार होना चाहता हूँ ।

i k&12 gekjh vko' ; drk

हम सभी परिवार एवं समाज में जीते हैं । परिवार और समाज में निर्वाह करने के लिये अनेक वस्तुओं की आवश्यकता होती है ।

भूख मिटाने के लिए भोजन की आवश्यकता होती है । प्यास मिटाने के लिए पानी पीते हैं । ठंड से बचने के लिए कपड़े, वर्षा से बचने के लिए छाता एवं बरसाती कपड़े की आवश्यकता होती है । घर में रहकर हम आँधी, वर्षा, ठंड एवं गर्मी से बचते हैं ।

इस प्रकार हम समझते हैं कि भोजन, वस्त्र एवं मकान से हमारे शरीर की सुरक्षा होती है । ये हमारे शरीर के लिए आवश्यक वस्तुएँ हैं ।

पैरों से चलकर हम आसपास के घरों में जाते हैं । कुछ दूर जाना हो तो सायकल में बैठकर जाते हैं । एक साथ कई व्यक्तियों को जाना हो तो रिक्शा, तांगा या बैलगाड़ी में बैठकर जाते हैं । अधिक दूरी तक यात्रा करने के लिए बस, कार या रेलगाड़ी का उपयोग करते हैं । पानी में यात्रा करने के लिए नाव एवं अन्य जलयान का उपयोग करते हैं । दूरदेशों की यात्रा के लिए वायुयान का उपयोग होता है । विमान एवं हेलीकाप्टर वायुयान कहलाते हैं ।

दूर की ध्वनि सूनने के लिए रेडियो होता है । दूर रहने वाले सम्बन्धियों से बात करने के लिए दूरभाष का उपयोग करते हैं, जैसे टेलीफोन यंत्र एवं माबाईल फोन यंत्र । दूर के दृश्य देखने के लिए हम दूरदर्शन यंत्र का उपयोग करते हैं, जैसे टेलीविजन ।

समाज में निर्वाह करने के लिए दूरगमन, दूरश्रवण एवं दूरदर्शन यंत्रों की आवश्यकता होती है ।

i k&13 tkuuk

मैं स्वयं को ओर चारों ओर की वस्तुओं को जानना चाहता/चाहती हूँ । जिस वस्तु को देखता और पहचानता/पहचानती हूँ उसे जानने की इच्छा होती है । मुझे मिट्टी पत्थर, पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, आकाश एवं ग्रहों को जानने की इच्छा होती है । जानकर मुझे प्रसन्नता होती है । मैं जिनके साथ जीता/जीती हूँ उनकी अच्छाइयों को जानना चाहता हूँ । मैं अपनी क्षमताओं को नना चाहता/चाहती हूँ । मैं किस प्रकार से सुखी होऊँगा, यह भी जानना चाहता/चाहती हूँ ।

दूसरे लोग भी मेरी अच्छाइयों को जानना चाहते हैं । एक दूसरे की अच्छाइयों को जानकर साथ-साथ जीने में प्रसन्नता होती है ।

सभी मनुष्य जानना चाहते हैं क्योंकि सभी मनुष्य ज्ञानावस्था में हैं ।

i kB&14

mRl o

प्रसन्नता से भर जाते, वह क्षण होता है उत्सव ।
हर क्षण उत्सव में जीऊँ, जीवन में हो नित उत्सव ॥ 1 ॥

अंधकार दूर हटाकर, सूरज आ लाता उत्सव ।
अंधकार दूर हटाकर, पूर्ण चन्द्र भी लाए उत्सव ॥ 2 ॥

ठंडी की ठिठुरन बीती, बसन्त ऋतु ले आए उत्सव ।
अब है झुलसाती गर्मी, खेल कूद का ये उत्सव ॥ 3 ॥

घर लाकर फसल रखते, इसका भी करते उत्सव ।
सम्बन्ध में अपना जीना, हो जाता है नित उत्सव ॥ 4 ॥

i kB&16

—r¶

क्रम से आए ऋतुएँ सारी ।
वर्षों से ये आती जाती ॥ 1 ॥

आने का क्रम इनका निश्चित ।
फल भी होता इनका निश्चित ॥ 2 ॥

दो मास की होती ऋतुएँ ।
गणना में छः होती ऋतुएँ ॥ 3 ॥

हुआ आगमन अब ऋतु बसंत ।
तीखी सर्दी का आया अंत ॥ 4 ॥

लम्बे दिन है छोटी रातें ।
ग्रीष्म ऋतुओं को हम पहचाने ॥ 5 ॥

आसमान में काले बादल ।
धरती में ऋतु वर्षा का जल ॥ 6 ॥

वर्षा गई नमी ऋतु आई ।
शरद में फसल लहराई ॥ 7 ॥

सुखद शरद का हुआ अंत ।
ठण्डी लाया है ऋतु हेमंत ॥ 8 ॥

दिन छोटा लम्बी ठण्डी रात ।
अंतिम है शिशिर ऋतु की बात ॥ 9 ॥

परिवार एवं समाज में जीते हुए हमें अनेक वस्तुओं की आवश्यकता होती है। इनमें से अधिकांश वस्तुओं को मानव बनाता है। जैसे कुर्सी बनाना, कपड़ा बनाना, मकान बनाना भोजन बनाना इन सभी कार्यों का सम्मिलित नाम व्यवसाय है।

श्रम से सारे व्यवसाय होते हैं। व्यवसाय कई प्रकार के होते हैं। कृषि कार्य, पशुपालन वस्त्र निर्माण, भवन निर्माण, यंत्रों का निर्माण, औषधि निर्माण, लौह एवं इस्पात उद्योग, बर्तन निर्माण, कागज निर्माण, दूरदर्शन यंत्र निर्माण, यातायात के साधनों का निर्माण, अलग-अलग व्यवसायों के नाम हैं। सफाई करना एवं वस्तुओं का सुधार करना भी व्यवसाय है। प्रत्येक परिवार एवं मानव समाज के लिए भी व्यवसाय अनिवार्य है।

व्यवसाय में भागीदारी करके ही प्रत्येक मानव सुखी होता है।

मैं शरीर द्वारा कल्पना को साकार करता/करती हूँ। सिर, पैर, नाक, कान, मुँह, हाथ ये शरीर के अंग हैं। शरीर में पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं — आँख, नाक, कान, जीभ एवं त्वचा।

नाक के द्वारा हम गन्ध को पहचानते हैं। कान द्वारा हम ध्वनि और शब्दों को पहचानते हैं। आँख द्वारा वस्तुओं के आकार और रंग को पहचानते हैं। जीभ के द्वारा स्वाद एवं त्वचा से स्पर्श को पहचानते हैं।

शरीर में पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं — मुँह, हाथ, पैर, मूत्रेन्द्रिय एवं गुदा।

मुँह से बोलते हैं, हाथों से कार्य करते हैं एवं पैरों से चलते हैं। मूत्रेन्द्रिय से मूत्र एवं गुदा से मल का त्याग करते हैं।

हम मुँह से भोजन करते हैं। मुँह में चबाया हुआ भोजन पेट में जाता है। चबाया हुआ भोजन पेट में पचता है। पाचन क्रिया से बनने वाले रस से शरीर को शक्ति मिलती है। पाचन से शेष सामग्री मल के रूप में शरीर से बाहर निकल जाता है। भोजन के साथ जो पानी लेते हैं, वह पाचन के बाद मूत्र बनकर बाहर निकल जाता है। हम अधिक पानी पीते हैं तो अधिक मूत्र बनता है।

उचित समय पर उचित मात्रा में भोजन, पानी, व्यायाम और विश्राम से शरीर स्वस्थ रहता है। स्वस्थ रहने पर हम सबका सहयोग कर पाते हैं एवं प्रसन्न रहते हैं।

i kB&18

vkgkj

आहार से शरीर को शक्ति मिलती है । आहार को खूब चबाकर सेवन करने से अच्छी तरह पाचन होता है । आहार करने के पश्चात पाचन क्रिया पूर्ण होने तक आहार करना बंद किया जाता है । इससे पाचन अच्छी तरह होता है । इसलिए घर में सुबह, दोपहर, शाम एवं रात्रि को भोजन किया जाता है ।

मानव के आहार का प्रधान भाग वनस्पति है । इसे प्राणावस्था भी कहते हैं । वनस्पति के जड़, तना, पत्ती, फूल, फल और बीज इन सभी अंगों का आहार में प्रयोग होता है । कच्चा एवं पकाया हुआ आहार किया जाता है ।

आहार में दूध का प्रयोग किया जाता है । दूध से दही, मठा, माखन, घी एवं कई प्रकार के मिठाई बनती है । दुधारु पशुओं को पालकर दूध प्राप्त किया जाता है । दुधारु पशु जीव अवस्था में आते हैं ।

आहार में नमक एवं जल में प्रयोग किया जाता है । ये पदार्थ अवस्था में आते हैं ।

i kB&19

vksf/k

अनुकूल भोजन, पानी, व्यायाम, विश्राम एवं सफाई से शरीर स्वस्थ रहता है ।

भोजन अनुकूल न होने पर शरीर अस्वस्थ हो जाता है । अस्वस्थ शरीर को ठीक करने के लिए अनुकूल आहार, रख-रखाव और औषधि की आवश्यकता होती है । अनुकूल की समझ हमें माता, पिता और गुरुजन देते हैं ।

अनेक वस्तुएँ औषधि कार्य में उपयोगी होती हैं । जैसे तुलसी, नीम, हल्दी, गुलाब का फूल, आँवला, नीबू ।

सर्दी और खाँसी में तुलसी के पत्ते का रस देते हैं । चर्म रोग में नीम की पत्तियों को पीसकर लगाते हैं । चोट लग जाने पर हल्दी पीसकर लगाते हैं । गुलाब जल को आँख में प्रयोग करते हैं । आँवला और नीबू का उपयोग पेट के रोग में किया जाता है ।

धनिया, मेथी, अजवाइन, कालीमिर्च जैसे मसाले भी औषधि कार्य में उपयोगी होते हैं । सामान्य घरेलू वस्तुओं जैसे फिटकरी, चूना, नमक भी औषधि कार्य में उपयोगी होता है । औषधि कम मात्रा में लिया जाता है ।

अधिक मात्रा में औषधि खाने से शरीर अस्वस्थ हो सकता है । माता, पिता, गुरुजी एवं योग्य चिकित्सक औषधि का प्रयोग करते हैं ।